’हिंदी के दिव्य कलाधर’ की पूर्ण छवि उकेरने का प्रयास

गौरव गौतम

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रवेश जिस समय साहित्य की दुनिया में होता है उस समय साहित्यकार किसी खास ’विधा’ के भीतर ही साहित्य सृजन नहीं करते थे बल्कि अनेक विधाओं में लिखकर साहित्य को समृद्ध और पाठकों को संस्कारित कर रहे थे। कृष्ण बिहारी पाठक ने अपनी कृति ’रामचंद्र शुक्लःदृष्टि-सृष्टि’ में शुक्ल जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के अनेक आयामों को स्पष्ट किया किया है।

अपनी अष्टाध्यायी कृति में पाठक ने जिन विषयों को चुना है उन पर भिन्न- भिन्न रूप से कई पुस्तकें लिखी गयी है और आगे भी उन विषयों पर लिखने की संभावना मौजूद है किंतु इन सभी विषयों को समग्र रूप से एक कृति में प्रस्तुत करना श्रमसाध्य कार्य है और जरूरी भी। जरूरी इसलिए क्योंकि शुक्ल जी के कृतित्व के अंशात्मक चयन और उत्खनन से उनके व्यक्तित्व पर कृतित्व के अन्य पक्षों को ओझल करके उन पर अनेक तरह के आरोप मढ़े गए है जिसमें शुक्ल जी को ’ब्राह्मणवाद’ (Brahminism) की परिधि में सीमित करने का प्रयास भी किया गया। जिससे पढ़नेवालों के मन में एक पूर्वधारणा स्थापित हो जाती है। पाठक जी की यह कृति शुक्ल जी के कृतित्व को आधार बनाकर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रकट करती है जिससे प्रेरणा पाकर साहित्यकार हिंदी साहित्य की ’श्री’ में वृद्धि कर रहे है।

शुक्ल जी के आलोचक और निबंधकार वट-व्यक्तित्व के कारण बहुत से लोग यह बात ही भूल जाते है कि उन्होंने कहानी विधा में ’ग्यारह वर्ष का समय’ नामक कहानी भी लिखी है। ”एक सर्वांगपूर्ण कहानी में जिन-जिन तत्वों की उपस्थिति या अभिनिवेश

होना चाहिए वे सब इसमें है। व्यक्तिगत मनोदशाएं, परिवार, समाज और गांव की संस्कृति, आपदा के दृश्य प्रकृति चित्रण, मार्मिक दृश्य, उद्देश्यपूर्णता और कथा सुलभ रोचकता।"(1)डॉ लक्ष्मी नारायण लाल ने इसे शिल्प की दृष्टि से हिंदी साहित्य की प्रथम कहानी भी कहा है।

कृष्ण बिहारी पाठक ने अपनी कृति में उदाहरण के साथ बताया है कि शुक्ल जी की कहानी ने कहानी विधा के विकास को किस प्रकार दिशा प्रदान की है। इस कहानी में प्रसाद जी की कहानियों की तरह 'प्राकृतिक बिम्बों की स्पृहणीय आत्मीयता और मानवीय क्रियाओं का सहज आरोपण' मिलता है साथ ही इस कहानी के जैसी "आपदाग्रस्त मानव की विपुल मनोभूमियाँ प्रेमचंद के कथा संसार में,मानव मन की यही चिर परिचित गुत्थियां जैनेन्द्र के कथा लोक में, समरसता का ऐसा ही आग्रह यशपाल की कारीगरी में और प्रतीकों से उभरती कथात्मकता की यही ढब कुछ और संवर कर विस्तार पाकर हिन्दी कहानी साहित्य को विस्तारित करती है।"(2) इसीलिए पाठक जी का मानना है कि "पठनीयता के आग्रह और आकर्षण के साथ शुक्ल जी की यह कहानी आगे के कहानीकारों और कहानी विधा के लिए निश्चय ही प्रस्थान बिंदु है और इसे निस्संदेह हिन्दी की प्रारंभिक प्रवर्तनकारी कहानियों में प्रथम स्थान पर रखा जा सकता है।"(3)

शुक्ल जी ने कविताएँ बहुत कम मात्रा में लिखी है। उनकी कविताओं का विषय ज्यादातर प्रकृति वर्णन और व्यक्तित्व से संबंधित है। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास, भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाबू देवकीनंदन खत्री आदि पर कविता लिखी है। इसके अलावा अपनी सिद्धांतों की स्थापना व अन्य लोगों की मान्यताओं को नकारने के लिए भी

उन्होंने कविताओं को माध्यम बनाया है जैसे पाखंड प्रतिषेध में छायावादी कवियों की स्थापनाओं और मान्यताओं का विरोध किया है

काव्य में 'रहस्य' कोई 'वाद' हैं न ऐसा, जिसे
लेकर निराला कोई पंथ ही खड़ा करे;
यह तो परोक्ष रुचि-रंग की ही झाईं हैं, जो
पड़ती हैं व्यक्त में अव्यक्त-बिंबता धरे।
दृष्टि जो हमारी कर देती हैं लीन किसी,
धुंधली-सी माधुरी में लोक-काल से परे;
किंतु जो इसी के सदा झूठे स्वाँग रचे, उसे
हाँक दो, न घूम-घूम खेती काव्य की चरे।(4)

अपने निबंध और आलोचना में शुक्ल जी ने प्रकृति काव्य संबंधी जो मान्यताएँ स्थापित की है वह उनके एकमात्र काव्य संग्रह 'मधुस्रोत'(1971) में देखने को मिलती है जिसका विस्तृत विवरण पाठक जी ने अपनी कृति के पहले अध्याय 'रामचंद्र शुक्ल के चिंतन में प्रकृति' में दिया है।

वर्तमान समय में 'इको फ्रेंडली', इको फ़ेमिनिज्म जैसे शब्द का चलन बढ़ रहा है। लेकिन धरती ग्लोबल वार्मिंग और ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण निरंतर तप्त हो रही है। यह मानवकेंद्रित विचारधारा के कारण है जिसमें मानव केवल उपभोक्ता बन चुका है। विकास की दौड़ में मानव विनाश की ओर बढ़ रहा है। जिस तरह गांधी जी ने अपनी कृति 'हिंद स्वराज' में और प्रसाद ने 'कामायानी' में 'मनु' के पश्चाताप के द्वारा वातावरण के असंतुलन और उसके दुष्प्रभाव को व्यक्त किया है

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
हम सब थे भूले मद में;
भोले थे, हाँ तिरते केवल,
सब विलासिता के नद में।(5)

उसी तरह शुक्ल जी ने भी विकृत आधुनिकता के विचार का विरोध किया है जिसके कारण सभ्यता कुरूप दिखने,नष्ट होने की कगार तक पहुँच रही है। प्रकृति ने मानव को क्या स्वरूप दिया और मनुष्य ने इसे कैसा बना दिया; शुक्ल जी ने इसे विरोधाभास के द्वारा बतलाया है-

"काया की न छाया यह केवल तुम्हारी द्रुम,
अंतस के मर्म का प्रकाश वह छाया हैं;
भरी हैं इसी में वह स्वर्ग-स्वप्नधारा अभी,
जिसमें न पूरा-पूरा नर बह पाया हैं।
शांतिसार शीतल प्रसार यह छाया धन्य,
प्रीति-सा पसारे इसे कैसी हरी काया हैं;
हे नर! तू प्यारा इस तरु का स्वरूप देख,
देख फिर घोर रूप तूने जो कमाया हैं ।।"(6)

मानव भी चराचर का ही हिस्सा है। भारतीय संस्कृति में जो 'वसुधैव कुटुंबकम' और 'सर्वे भवंतु सुखिनः' का भाव है उसमें पूरा जैव समुदाय समाहित है। संपूर्ण पारिस्थितिकी खाद्य जाल और खाद्य श्रृंखला के रूप में जुड़ी है। अर्नेस्ट हैकल की पुस्तक 'The Riddle

of the Universe' का 'विश्व प्रपंच' के नाम से अनुवाद करने वाले शुक्ल जी प्रकृति के इस गुण से परिचित थे। पाठक जी के अनुसार "प्रकृति को छेकती मानवता पर शुक्ल जी ने प्रश्न खड़ा किया है और स्पष्ट कह दिया है कि विश्व की पूर्णता हेतु केवल मानव का विकास ही अलम् नहीं है। मनुष्य ही तो सब कुछ नहीं है।"(7) केवल मानवीय स्वार्थ, भोग विलास और सुख सुविधा के लिए धरती की हरीतिमा को उघाड कर उसे नग्न बनाना उचित नहीं। 'झलक-2' शीर्षक कविता में शुक्ल जी मानव जाति से चेतावनी के स्वर में कहते है कि

कर से कराल निज काननों को काटकर,
शैलों को सपाट कर, सृष्टि को सँहार ले;
नाना रूप रंग धरे, जीवन उमंग-भरे,
जीव जहाँ तक बने मारते, तू मार ले।
माता धरती की भरी गोद यह सूनी कर,
प्रेत-सा अकेला पाँव अपने पसार ले;
विश्व बीच नर के विकास हेतु नरता ही,
होगी किंतु अल्म न, मानव! विचार ले।। (8)

यदि मानव अभी भी विचार ले तो IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change) की रिपोर्ट में जिस विनाश की आशंका जतायी गयी है उससे बच सकता है। पाठक के अनुसार "जब तक इस संसार में संवेदनाएं हैं और जब तक इन संवेदनाओं के अंकुरण, प्रस्फुटन और पल्लवन के लिए कविता की आवश्यकता समझी जाएगी तब तक कविता और जीवन में प्रकृति तथा प्रकृति विषयक चिंतन का महत्व रेखांकित करने वालों के बीच आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शुभ प्रभाव का स्मरण बना रहेगा।"(9)

निबंधों का लेखन हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग से ही शुरू हो गया था लेकिन विषय और शैली दोनों स्तरों पर निबंध विधा को परिष्कृत और परिमार्जित करने का काम शुक्ल जी ने ही किया। चिंतामणि के चार भागों में शुक्ल जी के निबंध संकलित है।

चिंतामणि भाग- 1 की भूमिका में शुक्ल जी ने कहा है कि”इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही बुद्धि पर हृदय को भी साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँचती है, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता रहा है। बुद्धि-पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न-कुछ पाता रहा है।” (10) बुद्धि और हृदय के सामंजस्य के कारण शुक्ल जी के निबंधों में तार्किकता और आत्मीयता दोनों है। न तार्किकता इतनी ज्यादा है कि निबंध बोझिल हो जाए और न आत्मीयता का पुट ही इतना है कि निबंध वायवीय हो जाए। निबंध लेखन के दौरान शुक्ल जी समास शैली और व्यास शैली दोनों का प्रयोग करते है जिससे निबंधों में रोचकता और पठनीयता बनी रहती है।

शुक्ल जी ने निबंधों में आलोचकीय मान्यताएँ भी स्थापित की है। कृष्ण बिहारी पाठक का मानना है कि ” ’चिंतामणि’ को शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति के आधार ग्रंथ के रूप में देखना चाहिए। शुक्ल जी द्वारा प्रणीत ’हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में वर्णित कृति-कृती समीक्षाएं, सूर तुलसी जायसी के कृतित्व पर केंद्रित आलोचनाएँ यदि उनकी आलोचना का व्यवहार पक्ष है तो चिंतामणि उसका सिद्धांत पक्ष है। लक्षण उदाहरण के तुक पर चिंतामणि को आलोचना के शुक्ल स्कूल का लक्षण ग्रंथ भी कहा जा सकता है।”(11) ’चिंतामणि में शुक्ल जी का विस्तृत अध्ययन परिलक्षित होता है कि लेखक ने

भारत और पश्चिम के साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि को न केवल पढ़ा है बल्कि अपने चिंतन की मदिराचल से ज्ञान के समुद्र का मंथन कर जो रत्न प्राप्त किए है उसे ही अपनी कृति रूपी माला में पिरो दिया है।"चिंतामणि में अंतर्निहित भाव विमर्श की आधार भूमि भारतीय रस सिद्धांत एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान से लेकर शुक्ल जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और मौलिक चिंतन से विविध भावों, मनोविकारों को भारतीय संदर्भों में परिभाषित किया। साहित्य और साहित्यकारों का मूल्यांकन करते समय वे इन परिभाषाओं को केंद्र में रखकर चलते हैं।"(12)

हिंदी आलोचना में जब शुक्ल जी आगमन हुआ तब एक ओर तुलनात्मक आलोचना के द्वारा रीतिकाल के कवि देव और बिहारी को एक दूसरे से श्रेष्ठ बताया जा रहा था वहीं दूसरी तरफ महावीर प्रसाद द्विवेदी जी साहित्य में नैतिक मूल्यों की कसौटी पर कृतियों व साहित्यकारों की जाँच परख कर रहे थे। इसके अलावा ग्रियर्सन जैसे विद्वान कंपनी के शासन में भाषा का विकास बता चुके थे और भक्ति आंदोलन को ईसाईयों की देन कह रहे थे जो बिल्कुल भी तार्किक न था।

'चिंतामणि' में ' भाव', उत्साह, क्रोध, लोभ और प्रीति, लज्जा और ग्लानि, श्रद्धा और भक्ति जैसे मनोविकारों की विवेचना करने वाले शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना में " कवियों की विशेषताओं का अन्वेषण और उनकी अंतः प्रकृति की छानबीन करने वाली उच्चकोटि की समालोचना का प्रारंभ" (13)किया। इसके पहले आलोचना कृति और कृतिकार के गुण- दोष विवेचन तक सीमित थी। आलोचना विधा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्व को बताते हुए सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'अणिमा' लिखा है कि

अमा निशा थी समालोचना के अंबर पर
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर ।
दीप्ति - द्वितीया हुई लीन खिलने से पहले
किन्तु निशाचर सन्ध्या के अन्तर में दहले ।
स्पष्ट तृतीया, खिंची दृष्टि लोगों की सहसा,
छिड़ी सिद्‌ध साहित्यिक से तुमसे जब वचसा।
मुक्त चतुर्थी, समालोचना वधू व्याहकर
लाये तुम, पञ्चमी काव्यवाणी अपने घर ।
षष्ठी; छः ऐश्वर्य प्रदर्शित कोष प्राण में;
शिक्षण की सप्तमी, महार्णव सप्त ज्ञान में ।
दिये अष्टमी आठों वसु टीकाओं में भर,
नवमी शान्ति ग्रहों की, दशमी विजित दिगम्बर ।
एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी,
त्रयोदशी- प्रदोष-गत चतुदशी - रत्न शशी ।(14)

’हिंदी के दिव्य कलाधर’ आचार्य शुक्ल ने आलोचना का ऐसा ढाँचा खडा़कर दिया था जिससे प्रेरित और प्रभावित होकर आलोचना विधा दम- खम के साथ आगे बढ़ी।

शुक्ल जी किसी भी सिद्‌धांत को व्यावहारिकता की कसौटी पर परख कर ही उसके बारे में कुछ कहते है चाहे वह भारतीय परम्परा से प्राप्त सिद्‌धांत हो या पश्चिमी जगत से। आचार्य शुक्ल का लेखन काल औपनिवेशिक समय का है जिस समय कुछ लोग पश्चिमी सभ्यता की तरफ आकर्षित ही नहीं बल्कि आलिंगित भी थे वहीं कुछ लोग पश्चिमी सभ्यता से बचते- बचते संकीर्णताओं से ग्रस्त थे। आचार्य शुक्ल ने अपने

अध्ययन, चिंतन और मनन से जो साहित्येतिहास का लेखन किया वह पश्चिमी मूल्यों से टकराने वाला है इसी कारण जब वह पाश्चात्य विद्वानों का खंडन करते है तो उसमें 'अंगूर खट्टे है' का भाव नहीं होता है।

औपनिवेशिक भारत में केवल आर्थिक तौर पर शोषण नहीं किया जा रहा था बल्कि भारत को सांस्कृतिक रूप से भी हीन बताया जा रहा था। मैकाॅले जैसे लोग संपूर्ण भारतीय वाङ्मय को यूरोप के पुस्तकालय के एक सेल्फ में रखी पुस्तकों से हीन बताते थे। अपने को श्रेष्ठ बताने के लिए कुछ भारतीय यह भी कहने लगे कि 'हमारे यहाँ भी यूरोप के जैसी व्यवस्था है।' यानी औपनिवेशिकता के दौरान हीन भी कहा-बताया जा रहा था और श्रेष्ठ होने के प्रतिमान का निर्धारण भी यूरोपीय विद्वानों व उनके भारतीय अनुयायी द्वारा किया जा था। ऐसी स्थितियों का सामना शुक्ल ने डटकर किया। "उपनिवेशवाद से टकराहट में एकता के राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ही रामचंद्र शुक्ल ने 'भेद में अभेद' कहा था, क्योंकि बहुत से धर्म, जातियों, भाषाओं और क्षेत्रीय खूबियांवाले भारतीय समाज में 'नाना भेदों में अभेद की दृष्टि ही सच्ची तत्त्व दृष्टि' हो सकती है। रामचंद्र शुक्ल की आलोचना का संबंध भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी जातीय पहचान के निर्माण से है।"(15) आचार्य शुक्ल ने अपनी दृष्टि से दूसरों के साहित्य को परखने पर जोर दिया जिससे थोथे को छोड़ हम सार को ग्रहण कर सके। पाठक जी के अनुसार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "भारतीय आलोचना पद्धति के राजोद्यान को उपनिवेशीकरण और विदेशी आग्रह की खरपतवार तथा वैचारिक प्रदूषण की झाड़ झंखाड़ से मुक्त करके भारतीय साहित्य पर बड़ा भारी उपकार किया है। भारतीय विचार पद्धति की विराट तरुछाया में चिंतन शैली की शीतलता और सांस्कृतिक परंपराओं की सुगंध से

सुवासित इस राजोद्यान की चिरंतन हरीतिमा के लिए भारतीयता की निर्मल वैचारिक धारा से इसका निरंतर अभिसिंचन अनिवार्य है।"(16)

रामचन्द्र शुक्ल के प्रिय कवि तुलसीदास ने कहा है कि "संग्रह- त्याग न बिनु पहिचाने।"(17) इसे अपनाते हुए शक्ल जी ने युगबोध के अनुरूप साहित्य का सृजन किया। "रामचंद्र शुक्ल का महत्व इस बात को लेकर है कि उन्होंने परंपरा से चली आती हुई रस सिद्धांत की शास्त्रीय पद्धति को मानव मनोविज्ञान की अंतःप्रवृत्ति से जोडकर और अधिक व्यावहारिक तथा अद्यतन रूप प्रदान किया। इस तरह रामचंद्र शुक्ल ने युगीन प्रवृतियों और मानव व्यवहार से रस के स्वरूप को जोड़ते हुए रसवाद की एक मौलिक सैद्धांतिकी विकसित की।"(18)

भारतेंदु युग के लेखक बालकृष्ण भट्ट ने कहा कि 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है।' शुक्ल जी ने इसी परम्परा के अनुरूप माना है कि "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।" इसी कारण साहित्य के मूल्यांकन के प्रतिमान देश के अनुरूप होने चाहिए। जिसके लिए देश से परिचित होना आवश्यक है। शुक्ल जी के अनुसार " परिचय प्रेम का प्रवर्तक है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। यदि देश प्रेम के लिए हृदय में जगह करनी है तो देश के स्वरूप से परिचित और अभ्यस्त हो जाओ।"(19) लेकिन देश के प्रति हीनभावना होने के कारण (जिसका लोगों को आभास भी नहीं होता) लोग अपनी संस्कृति में रम नहीं पाते, उससे घुल मिल नहीं पाते जिसका उदाहरण शुक्ल जी ने ही 'लोभ और प्रीति' निबंध में दिया है-

”मैं अपने एक लखनवी दोस्त के साथ साँची का स्तूप देखने गया। यह स्तूप एक बहुत सुंदर छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर है, नीचे एक छोटा-सा जंगल है जिसमें महुए का पेड़ भी बहुत से हैं संयोग से उन दिनों पुरातत्व विभाग का कैंप पड़ा हुआ था। रात हो जाने से हम लोग उस दिन स्तूप नहीं देख सके। सवेरे देखने का विचार करके नीचे उतर रहे थे। वसंत का समय था। महुए चारों ओर टपक रहे थे। मेरे मुँह से निकला “महुओं की कैसी मीठी महक आ रही है।” इस पर लखनवी महाशय ने मुझे रोककर कहा, ”यहाँ महुए-सहुए का नाम न लीजिए, लोग देहाती समझेंगे।” मैं चुप हो गया, समझ गया कि महुए का नाम जानने से बाबूपन में बड़ा भारी बट्टा लगता है।”(20)

भूमंडलीकरण के दौर में ’बाबूपन में बट्टा लगना’ बढ़ा ही है, कम नहीं हुआ है। ’हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास’(1996) लिखने वाले बच्चन सिंह का मानना है कि ” पश्चिमी वादों से हम पहले की अपेक्षा आज अधिक आक्रांत है।” (21) **पश्चिमी वादों के प्रति झुकाव की क्रमिक प्रक्रिया है। नामवर सिंह ने ’आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ’(1962) की भूमिका में लिखा है कि ”हिन्दी में साहित्यिक वादों एवं प्रवृत्तियों का परिचय अनेक पुस्तकों में सुलभ है। सर्वत्र वादों की संख्या गिनाने में होड़-सी लगी हुई है। बहुलता प्रदर्शित करने के लिए जैसे सबसे खुला मैदान यही दिखाई पड़ रहा है। कोशिश यही है कि किसी पाश्चात्य वाद का नाम छूट न जाये। कुछ उत्साही तो अपनी मौलिक खोज प्रमाणित करने के लिए हर यूरोपीय वाद के लिए हिन्दी से कुछ-न-कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत कर देते हैं।”**(22)

’उदाहरण प्रस्तुत करने वाले उत्साही’ शुक्ल जी के समय भी थे। शुक्ल जी ने ”समालोचना के सांस्कृतिक प्रतिमान” के द्वारा आलोचना के जो मानदण्ड स्थापित किये थे वे आज भी दिशासूचक है जिसके कारण हिंदी आलोचना में देशीपन आज भी

है जो लोकल की ज़मीन में पाँव जमाकर ग्लोबल को निहारती है। पाठक जी के अनुसार ”रचना और रचनाकार के मूल्यांकन के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित मान्यताएं आज भी प्रासंगिक बनी हुई है, क्योंकि इनकी बनावट और बुनावट में सांस्कृतिक सरणियाँ अंतर्निहित हैं। सांस्कृतिक सरणियों में उदात्त जीवन मूल्य, समग्र चिंतन और चिरंतन जीवन दृष्टि का समावेश रहता हे जो सत्य शिव और सुंदर की आह्वानपरक चेतना के चलते कालचक्र को भेदकर कालजयी ओचित्य को परिभाषित करते हैं।”(23)

साहित्य समाज के द्वारा नहीं व्यक्ति के द्वारा ही लिखा जाता है जिससे उसमें देशकाल और वातावरण की छाप होना स्वाभाविक है। भारतीय साहित्य में प्राणी मात्र के प्रति दया भाव, प्रकृति के लिए पवित्रता बोध, कार्य का कर्मफल से जुड़ाव कुछ ऐसी विशेषताएँ है जो उसे अन्य देश के साहित्य से विशिष्टता प्रदान करती है जिससे विश्व साहित्य में भारत अपना योगदान दे सके। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित आलोचनात्मक प्रतिमान और उनके विनियोग यदि आज भी उतने ही प्रासंगिक, उतने ही अर्थवान बने हुए हैं तो इसका एकमात्र कारण उनकी अंतर्वर्ती चेतना और रचना प्रक्रिया में निहित भारतीयता ही है। (24) **जो ”आ नो भद्रा क्रतवो यंतु विश्वत” अर्थात् विश्व का श्रेष्ठ ज्ञान हमारे ओर आए की भावना को मानती है। शुक्ल जी ने पाश्चात्य समीक्षक आई. ए. रिचर्ड्स के मान्यताओं को स्वीकार करते है जबकि क्रोचे के ’अभिव्यंजनावाद’ को भारतीय वक्रोक्ति सिद्धांत का विलायती उत्थान कहा। शुक्ल जी की मान्यताओं पर सवाल किये जा सकते है, किया भी जाना चाहिए लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी सोच में संकीर्णता थी।**

शुक्ल जी 'हिंदी साहित्य के इतिहास' और अन्य आलोचकीय निबंधों में भाषा की चर्चा जरूर करते है। शुक्ल जी ने सन् 1905 ई. की ज्येष्ठ मास की पत्रिका आनन्दकादम्बिनी' में यह विचार व्यक्त किए थे कि "कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा ही जाति के धार्मिक और जातीय विचारों की रक्षिणी है, वही उसके पूर्ण गौरव का स्मरण कराती हुई, हीन से हीन दशा में भी, उसमें आत्माभिमान का स्रोत बहाती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।" (25) भाषा किसी भी समाज और संस्कृति की जड़ होती है। शुक्ल जी के लेखन के दौरान ब्रज भाषा बनाम खड़ी बोली का विवाद था वही हिंदी और उर्दू का विवाद भी बना हुआ था। शुक्ल जी ब्रज भाषा के अच्छे जानकार थे। उन्होंने The Light of Asia जो Edwin Arnold की पुस्तक है उसका काव्यानुवाद ब्रज भाषा में 'बुद्धचरित' नाम से किया। लेकिन उन्होंने खड़ी बोली को प्रोत्साहित किया क्योंकि विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति खड़ी बोली में ही ज्यादा अच्छे से संभव थी। यह गद्य लेखन के ज्यादा अनुकूल थी। पाठक जी अपनी कृति के 'भाषा सृष्टि- भाषा दृष्टि' नामक अध्याय में लिखते है कि "क्या कविता, क्या कहानी, क्या निबंध और समालोचना.... साहित्य की प्रत्येक विधा के वैशिष्ट्य और चरित्र के अनुरूप कैसी भाषा का व्यवहार किया जाना चाहिए, यह शुक्ल जी से सीखा जा सकता"(26)

शुक्ल जी ने यह माना है कि केशवदास को कवि हृदय नहीं मिला था लेकिन उन्होंने उनकी संवाद योजना की प्रशंसा की है जबकि अपने प्रिय कवि तुलसी और सूर की भाषा जहाँ शिथिलता है उसे भी रेखांकित किया है।"शुक्ल जी का भाषा विवेक केवल एक पक्षीय नहीं है। वे रचयिता के भाषिक अभिनिवेश को दोनों आँखों से देखते हैं। केवल गुणों को देखकर दोषों को सामने आते देख आँखें मूंद लेने की प्रवृति उनमें नहीं

अपने प्रियतम कवियों के संदर्भ में भी । तुलसी के 'मर्म वचन जब सीता बोला' में उपस्थित 'बोला' शब्द के लिंग भेद की गड़बड़ी हो अथवा सूरदास में तुकांत या छंद के लिए शब्द रूप बिगाड़ने की प्रवृत्ति, वे दोनों को स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं।" (27)

रीतिकाल में भूषण कवि की शब्द को तोड़ने मरोड़ने की प्रवृत्ति की कमी को बतलाते हुए उन्होंने बिहारी के एक- एक दोहे को हिंदी साहित्य का रत्न कहा है। "मुक्तक के रचना विधान की अनिवार्य शर्त कल्पना के समाहार के साथ भाषा की समास शक्ति को बिहारी में पूर्ण पाकर वे बिहारी को मुक्तक का सफल कवि सिद्ध करते हैं।(28)

हिंदी भाषा के संवर्धन और साहित्य की विविध विधाओं पर रचनाकर्म कर शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य को ऐसी नीव दी जिस पर बाद के रचनाकारों ने महल का निर्माण किया। हिंदी शब्द सागर के द्वारा शुक्ल जी ने बताया कि हिंदी की शब्द पूंजी कितनी विशाल है साथ ही विचारक के रूप में भी शुक्ल जी समाज को दिशा दिखाने वाले पथप्रदर्शक है।"आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा स्थापित प्रतिमान प्रासंगिक बने हुए हैं। साहित्यिक विधाओं के परिभाषीकरण, श्रेणीकरण और मूल्यांकन की आशा से शुक्ल जी की ओर देखने पर निराशा नहीं होती आशा और आश्वासन का यह सुखद विश्वास आगे भी बना रहेगा।"(29) **विगत वर्षों में शुक्ल जी पर मंडन-खंडन से भिन्न उनके रचनात्मक लेखन को रेखांकित करने वाली कृष्ण बिहारी पाठक की यह कृति शुक्ल जी के लेखन को गहराई से पढ़ने के लिए प्रेरित करती है।**

संदर्भ सूची

1. **पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्लः दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन, पेज 150**

2. वहीं, पेज 149
3. वहीं, पेज 150
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, मधुस्रोत(पाखंड प्रतिषेध),1971, नागरी प्रचारिणी सभा
5. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, चिंता सर्ग
6. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, मधुस्रोत (झलक-3) 1971, नागरी प्रचारिणी सभा
7. पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्ल: दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 31
8. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, मधुस्रोत (झलक-2) 1971, नागरी प्रचारिणी सभा
9. पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्ल: दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 56
10. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, चिंतामणि, इंडियन प्रेस प्रयाग, संस्करण, 1962, भूमिका
11. पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्ल: दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 123
12. वहीं पेज 124
13. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, पेज 354
14. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.243028/page/n28/mode/1up?view=theater
15. शंभुनाथ, उपनिवेशवाद और हिंदी आलोचना, रामचंद्र शुक्ल का वैचारिक संघर्ष, प्रकाशन संस्थान संस्करण 2014,भूमिका
16. पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्ल: दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 96

17. **रामचरित मानस, 1/5/1**
18. **पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्लः दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 97**
19. **शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, चिंतामणि, इंडियन प्रेस प्रयाग, संस्करण, 1962, पेज 77**
20. **वहीं, पेज 78**
21. **सिंह, बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास संस्करण 2020, राधाकृष्ण प्रकाशन,पेज 391**
22. **सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, संस्करण 2018, भूमिका**
23. **पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्लः दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन, पेज 57**
24. **वहीं, पेज 82**
25. **पालीवाल,कृष्णदत्त, आचार्य रामचंद्र शुक्ल का चिंतन जगत्, पेज 49**
26. **पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्लः दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 79**
27. **पाठक, कृष्ण बिहारी, रामचंद्र शुक्लः दृष्टि- सृष्टि, संस्करण 2023, मधुशाला प्रकाशन,पेज 76**
28. **वहीं पेज 79**
29. **वहीं पेज 121**

गौरव गौतम

शोधार्थी,

तुलनात्मक भाषा संस्कृति और अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर